गुरु -महिमा

डॉ० शिवचरण शर्मा "साहित्याचार्य"
प्रधानाचार्यः, राजकीय-वरिष्ठ-उपाध्याय-संस्कृत-विद्यालयः
महापुरा, जयपुरम् (राजस्थानम्)

"गुरु" इस दो अक्षरों के शब्द का अर्थ इतना गरिमापूर्ण व व्यापक है कि शिक्षक, अध्यापक, व्याख्याता, प्रोफेसर आदि शब्द इसके आस-पास भी नहीं ठहरते। कोष के अनुसार "गुरु" शब्द अनेक अर्थों में प्रसिद्ध है, जिनमें मुख्य हैं – गरिष्ठ, भारी, प्रशस्त बड़ा, लम्बा, विस्तृत, महत्त्वपूर्ण, आवश्यक, दुःसाध्य श्रद्धेय, आदरणीय, अभीष्ट, प्रिय, अहंकारी ज्येष्ठ पुरुष, अध्यापक स्वामी प्रधान अधीक्षक, बृहस्पति, नये सिद्धान्त का व्याख्याता धार्मिक गुरु बृहस्पति व पुष्य नक्षत्र आदि। पारिभाषिकरूप से गुरु वह है जो गायत्री मन्त्र का उपदेश करे और शिष्य को वेद का अध्यापन करे-

स गुरुर्यः क्रियाः कृत्वा वेदमस्मै प्रयच्छति। (याज्ञ. 1/34)

"गु" का अर्थ अन्धकार व "रु" का अर्थ तेज है। अतः गुरु वह होता है, जो। अज्ञानरूपो अन्धकार को दूर कर हृदय में प्रकाश का संचार कर दे। जैसा कि प्रसिद्ध भी है -

अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानांजनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ।। (गुरुगीता - स्कन्दपुराणे)

इस प्रकार गुरु, अज्ञानरूपी अन्धकार से अन्धे हुए जीव की आँखों को ज्ञानरूपी काजल के प्रयोग से खोल देने वाला होता है। शास्त्रवचनानुसार "गु" से माया आदि गुण एकट होते हैं "गुरु" से ब्रह्म प्रकाशित होता है व जो माया भ्रान्ति को विनष्ट करता है वह गुरु कहलाता है।

गुकारः प्रथमो वर्णो मायादिगुणभासकः।
सकारो द्वितीयो ब्रह्म मायाभ्रान्तिविनाशनम् ।।

भारतीय संस्कृति में गुरु महिमा की पराकाष्ठा प्राप्त होती है। गुरु को ब्रह्मा, विष्णु, शिव तथा परब्रहा माना गया है, क्योंकि गुरु में ब्रह्मा के समान नवीन आध्यात्मिक ज्ञानसृष्टि, विष्णु के समान शिष्यपालन तथा शिव के समान अज्ञान व माया के संहार का सामर्थ्य विद्यमान है। वस्तुतः श्रेष्ठ गुरु त्रिनेत्ररहित शिव, चतुर्भुजरहित विष्णु व चतुर्मुखरहित ब्रह्मा है -

अत्रिनेत्र सर्वसाक्षी, अचतुर्बाहुरच्युतः ।

अचतुर्वदनो ब्रह्मा, श्रीगुरुः कथितः प्रिये ।। (गुरुगीता)

इस प्रकार गुरु शिष्य के अज्ञानरूपी अन्धकार को दूर कर उसके हृदय को, उसके जीवन को प्रकाशित करने वाला होता है। गुरु ही शिष्य का अपने वास्तविक आत्मस्वरूप से साक्षात्कार कराता है। वही आत्मा के परमात्मा से मिलने का मार्ग प्रशस्त करता है, इसीलिए कहा गया है -

गुरु गोविन्द दोऊ खड़े, काके लागूँ पाँय ।

बलिहारी गुरु आपने गोविन्द दियो बताय ।।

वस्तुतः गुरु शब्द से आधुनिक समय में तीन प्रमुख अर्थ द्योतित होते हैं - आध्यात्मिक गुरु, शास्त्रज्ञान व जीवनमूल्यों की शिक्षा देने वाले आचार्य तथा निर्धारित पाठ्यक्रम पढाने वाले शिक्षक। यहाँ ध्यातव्य है कि शिष्य के हृदय से जुड़कर उसके सर्वविध कल्याण का प्रयत्न करने वाले व्यवसायी शिक्षक भी "गुरु' का दर्जा प्राप्त कर लेते हैं !

गुरु और शिष्य का संबंध ही ऐसा है कि दोनों के चित्तों की समानता अनिवार्य है। गुरु के आशीर्वाद से शिष्य यश को प्राप्त करता है तथा तेजस्वी छात्रों के माध्यम से गुरु की कीर्ति फैलती है। इसीलिए गुरु-शिष्य संबंधों की अनोखी व्याख्या हमारे उपनिषदों मे प्राप्त होती है

अथाधिविद्यम्। आचार्यः पूर्वरूपम्। अन्तेवास्युत्तररूपम्।

विद्या सन्धिः। प्रवचनं संधानम्।

यहाँ विद्याप्राप्ति का रहस्य समझाते हुए बताया गया है, कि विद्यारूप संहिता में गुरु तो पूर्व वर्ण है और श्रद्धा-भक्तिपूर्वक गुरु की सेवा करने वाला विद्याभिलाषी शिष्य परवर्ण है तथा गुरु और शिष्य के संबंध से उत्पन्न होने वाली विद्या या ज्ञान ही यहाँ सन्धि है। इस विद्यारूप सन्धि के प्रकट होने का कारण है - प्रवचन अर्थात् गुरूपदेश तथा शिष्य द्वारा श्रद्धापूर्वक सुन-समझकर उसे धारण करना -यही संधान है। जो व्यक्ति इस रहस्य को समझकर विद्वान गुरु की सेवा करता है, वह अवश्य ही विद्या प्राप्त कर विद्वान् हो जाता है। इस तरह के उच्चकोटिक शैक्षणिक सिद्धान्तों के बल पर ही भारतवर्ष विश्वगुरु कहलाया करता था।

वर्तमान में भी जो श्रेष्ठ शिक्षक हैं वे गुरु के गौरव की रक्षा करते हुए अपने शिष्यों के जीवन को श्रेष्ठ व सार्थक बनाने का प्रयास करते हैं। आज के इस भौतिक युग में शिक्षा का भी व्यवसायिकरण हो चुका है। शिक्षा के बल पर आजीविका प्राप्त करना तथा भौतिक संसाधन जुटाना ही आज के युवाओं का परमप्रयोजन बन गया है। ट्यूशन की दुकानें खुल गई हैं। गोस्वामी तुलसीदासजी ने रामचरितमानस में ऐसे व्यवसायी गुरुओं के विषय में क्या खूब कहा है -

हरहिं शिष्य धन शोक न हरहिं।

ते गुरु घोर नरक मँह परहिं ||

कविकुलगुरु कालिदास ने भी आजीविकामात्र के लिए ही शिक्षण व्यवसाय में आने वाले तथा ज्ञान को बेचने वाले शिक्षकों को वणिक बताया है-

लब्धास्पदोऽस्मीति दिवादभीरोस्तितिक्षमाणस्य परेण निन्दाम्।

यस्यागमः केवलजीविकायै तं ज्ञानपण्यं वणिजं वदन्ति ||

शिक्षक का दायित्व है कि वह अपने शिष्य की आन्तरिक शक्तियों को पहचानकर उन्हें प्रकाश में लाने तथा उसके सर्वांगीण विकास हेतु सर्वदा प्रयत्नशील रहे। शिष्य का भी कर्तव्य है कि वह श्रद्धा से गुरु की सेवा करते हुए जिज्ञासापूर्वक ज्ञानार्जन हेतु सर्वदा सन्नद्ध रहे। श्रीमद्भगवद्गीता में भी ज्ञानप्राप्ति का यही मार्ग बताया गया है।

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।

उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः ।। (4 / 34)

गुरु की महिमा का कहाँ तक वर्णन किया जाय ? गुरु ही संसार सागर में भटक रहे जीवों का उद्धार करने वाले हैं। वे शिष्य सौभाग्यशाली हैं जिन्हें सद्गुरु सुलभ हो गए हैं। क्योंकि भौतिक व आध्यात्मिक उन्नति के लिए गुरुकृपा आवश्यक है। अतः सभी का दायित्व है कि वे अपने में सद्गुरुप्राप्ति की पात्रता उत्पन्न करें। सद्गुरु ही शारीरिक व मानसिक सन्तापों का शमन करने में सर्वथा समर्थ हैं। संसार में हर वस्तु सुलभ है किन्तु सद्गुरु का मिलना दुर्लभ है अतः हर कीमत पर उन्हे प्राप्त कर आत्मसाक्षात्कार व सर्वविध अभ्युदय ही मानवमात्र का परम लक्ष्य है। सन्त कबीरदासजी के शब्दों में-

यह तन विष की बेलड़ी, गुरु अमृत की खान।

सीस दिए भी गुरु मिले, तो भी सस्ता जान।!

शिक्षागुरुओं के समक्ष तो शीश झुकाकर विनय - प्रदर्शन मात्र भी पर्याप्त है किन्तु आत्मोन्नति के पथिकों के लिए तो गुरु ही ध्यातव्य पूजनीय, जपनीय व कृपाप्राप्ति हेतु आराधनीय हैं। अतः आत्मकल्याण चाहने वाले साधकों को सद्गुरु के समक्ष स्वयं को समर्पित कर उनकी आज्ञानुसार ही संसार में आत्मकल्याणार्थ व विश्वोपकारार्थ प्रवृत्त होना चाहिए। ऐसे श्रेष्ठ शिष्य-समुदाय के लिए यही सन्देश सार्थक है -

ध्यानमूलं गुरोर्मूर्तिः पूजामूलं गुरोः पदम्।

मन्त्रमूलं गुरोर्वाक्यं, मोक्षमूलं गुरोः कृपा ।।